|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 2: सांख्ययोग

2/6 (श्लोक 13-24), रविवार, 29 मई 2022

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/FGoBUtXUdNQ

श्री भगवान के द्वारा आत्मतत्व का वर्णन

गीता परिवार की परंपरानुसार प्रार्थना, दीप-प्रज्ज्वलन, गुरु-वंदना, भारत माता, गुरु वेदव्यास जी, माँ भगवती और सद्गुरु गोविंददेव गिरि जी महाराज की वंदना के बाद गीता जी के दूसरे अध्याय सांख्ययोग का द्वितीय विवेचन सत्र आरंभ हुआ। हम सभी भाग्यशाली हैं कि हमारा गीता जी के साथ संग हो गया है, हमारा गीता जी से परिचय हो गया। यह सबसे महत्वपूर्ण है कि हम गीताजी को जानने के उद्यम में लगे हैं, जीवन में इससे अधिक सौभाग्य और कुछ नहीं हो सकता। श्रीमद्भगवद्गीता के पहले अध्याय में उस समय की परिस्थिति और अर्जुन की मनःस्थिति का वर्णन है। अर्जुन अपने मन की संपूर्ण दुविधा भगवान श्रीकृष्ण को बताते हैं। जैसे एक अच्छा काउंसलर पहले अपने मरीज की बात सुनता है और उसके बाद उसे वही उपाय बताता है जो उसके के लिए श्रेष्ठ है। भगवान ने पहले अर्जुन की बात सुनी और जब वे चुप हो गये तब उन्हें उपदेश दिया। दूसरे अध्याय में **'सांख्य'** तत्व का ज्ञान है। दर्शनशास्त्र में सांख्य दर्शन प्रमुख है, जिसे कपिल मुनि ने बताया है। इसमें मुख्यतः दो तत्व माने गए हैं - जड़ और चेतन। जो हमें दिखाई देता है, हम जिसका अनुभव कर सकते हैं, स्पर्श कर सकते है - वह जड़ है। जैसे वायु - वायु का अनुभव हम अपनी इन्द्रियों से करते हैं। चेतन हमें दिखाई नहीं देता लेकिन हमें उसका अस्तित्व मानना पड़ता है। जैसे शरीर हमें दिखाई देता है जो जड़ है, पर इसके साथ कोई अन्य तत्व है जिसका साथ छूट जाने पर शरीर मृत हो जाता है - वह परोक्ष (दिखाई न देने वाला) तत्व चैतन्य तत्व है। जैसे मोबाइल फोन का टावर के साथ कनेक्शन टूट जाने पर वह निष्क्रिय हो जाता है और हम बात नहीं कर सकते उसी तरह चैतन्य तत्व के चले जाने पर शरीर मृत हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता एक योगशास्त्र है। मूल तत्व को जानना और उसका अनुभव करना ही हमारे जीवन का लक्ष्य है ऐसा भगवान कहते हैं। दूसरे अध्याय के 12वें श्लोक में भगवान ने अर्जुन से कहा कि काल का कोई भी क्षण ऐसा नहीं था जिसमें में मैं नहीं था, तुम भी नहीं थे, ये राजा लोग जो इस युद्धभूमि में युद्ध के लिए आए हैं, ये भी नहीं थे। ऐसा कोई काल नहीं जिसमें हम नहीं थे। करोड़ों वर्ष पूर्व भी हम थे, और आगे भी हम रहेंगे। यह बात हमें पता होनी चाहिए कि ऐसा नहीं हो सकता कि हमारा कभी भी किसी भी काल में अस्तित्व नहीं था। हमें यह समझ लेना चाहिए कि हम सभी कालों में थे और सभी कालों में रहेंगे।

2.13

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे, कौमारं(म्) यौवनं(ञ्) जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिः(र्), धीरस्तत्र न मुह्यति॥2.13॥

देहधारी के इस मनुष्य शरीर में जैसे बालकपन, जवानी (और) वृद्धावस्था (होती है), ऐसे ही दूसरे शरीर की प्राप्ति होती है। उस

विषय में धीर मनुष्य मोहित नहीं होता।

विवेचन : इस देह में एक देहिन् अर्थात् जीवात्मा है जो चैतन्य है, आत्म तत्व है। बाल्यावस्था, कुमार अवस्था, वृद्धावस्था में शरीर बदल जाता है लेकिन एक अपरिवर्तनीय तत्व है जो श्रीभगवान का स्वरूप है जो कभी नहीं बदलता। व्यक्ति कहता है कि मैं बचपन में ऐसा था, जवानी में ऐसा था और वर्तमान में ऐसा हूँ - स्थूल शरीर बदल जाता है लेकिन वह मूल तत्व (आत्म तत्व) नहीं बदलता। वह जो नहीं बदलता वही श्रीभगवान का स्वरूप है। देहावसान के बाद शरीर नष्ट हो जाता है और जीवात्मा दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाती है ऐसा जानकर धीर ज्ञानी पुरुष कभी भी मोहित नहीं होते, अज्ञान में नहीं पड़ते। वे यह जानते हैं कि वह आत्म तत्व अनेक देह धारण करेगा किन्तु स्वयं नष्ट नहीं होगा। वे जानते हैं कि चैतन्य ही हमारा स्वरूप है। डॉक्टर मानते हैं हमारा शरीर हर क्षण बदलता रहता है। हमारे शरीर की कोशिकाएँ बनती और बिगड़ती रहती है। कालांतर में पूरा शरीर बदल जाता है पर जीवात्मा नहीं बदलती, वही रहती है। एक है - चैतन्य जो हमारा स्वरूप है, दूसरा है जड़ देह। चैतन्य को ही सूक्ष्म देह कहा गया है। यह चैतन्य इंटरनेट कनेक्शन के समान है। हम दूर-दूर बैठे हैं पर इंटरनेट के माध्यम से हम जुड़े हैं। मोबाइल से, लैपटॉप से या कंप्यूटर से जुड़कर हम एक-दूसरे को देखते हैं, लेकिन उस इंटरनेट के कनेक्शन को नहीं देख पाते जिसके माध्यम से हम जुड़कर एक-दूसरे को देख पाते हैं। जैसे इलेक्ट्रिसिटी से सारे यंत्र काम कर रहे हैं, लेकिन उसे हम नहीं देख पाते। वैसे ही चेतन है जिसे हम देख नहीं पाते। हमें उसी चैतन्य को जानना आवश्यक है क्योंकि वह कभी नहीं बदलता। वह चैतन्य ईश्वर का स्वरूप है।

2.14

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय, शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्याः(स्), तांस्तितिक्षस्व भारत॥2.14॥

हे कुन्तीनन्दन! इन्द्रियों के विषय (जड़ पदार्थ), तो शीत (अनुकूलता) और उष्ण (प्रतिकूलता) - के द्वारा सुख और दुःख देने वाले हैं (तथा) आने-जाने वाले (और) अनित्य हैं। हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! उनको (तुम) सहन करो।

विवेचन : स्थूल देह का संबंध इंद्रियों से है। इंद्रियाँ दो प्रकार की है – ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय। इन इंद्रियों के अपने-अपने विषय हैं। कर्मेंद्रियों के द्वारा हम संसार के संपर्क में रहते हैं। कानों का विषय है - शब्द, आँखों का विषय है - दृश्य, जिव्हा के विषय है - रस और शब्द, त्वचा का विषय है – स्पर्श। विषयों के साथ इंद्रियों का संयोग-वियोग होता है। जब इंद्रियों का उनके विषयों के साथ स्पर्श होता है तब हम अनुभव करते हैं। इंद्रियों का उनके विषयों के साथ होने वाले संयोग से सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। आँखों ने सुंदर दृश्य देखा तो सुख और बुरा दृश्य देखा तो दुःख की प्राप्ति होती है। गर्मी के मौसम में ठंडी हवा में सुख मिलता है, वहीं अगर हीटर चालू करें या गर्म हवा से हमें दुख होता है, जलन होती है। इंद्रियों का विषयों के साथ संयोग होने से होने वाली अनुभूति (सुख-दुख) सदा एक समान नहीं रहती, समय के साथ बदल जाती है। गर्मी के मौसम में जिस ठंडी हवा से सुख मिलता है वह सर्दी के मौसम में नहीं सुहाती। उसी प्रकार जो आने जाने वाला सुख है वह कुछ समय रहता है, सदैव नहीं रहता। इसलिए भगवान कहते हैं कि इसको (सुख-दुख को) सहना सीखना चाहिए। कितना भी बड़ा सुख हो या कितना भी बड़ा दुख हो, हमेशा के लिए नहीं रहता, आकर चला जाता है। परिस्थिति मुख्य नहीं है क्योंकि यह अनित्य है। हमें वह जानना है जो नित्य है वह भगवान का स्वरूप है, उसको जानना ईश्वर को जानना है।

एक बार अकबर ने बीरबल से पूछा कि वह कुछ ऐसा बताए जो हर परिस्थिति में लागू हो। बीरबल ने उत्तर दिया कि "महाराज यह समय बीत जाएगा।" अर्थात् कोई परिस्थिति सदा नहीं रहती बदलती रहती है।
सर्दियों में एक विद्यार्थी रजाई में बैठकर पढ़ नहीं सकता क्योंकि ठंड में रजाई में गरमाई देती है, सुख देती है जिसके कारण हो सकता है उसे नींद आ जाए। यदि ज्ञान प्राप्त करना है तो विद्यार्थी को पहले सर्दी-गर्मी को सहना सीखना होगा। जो नित्य है उस पर ध्यान दो, जो अनित्य है उसे भूलकर हमें उन सिद्धांतों को पढ़ना चाहिए जो कभी नहीं बदलते। शाश्वत ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए जो श्रीमद्भगवद्गीता जी के सिद्धांत हैं। कभी न बदलने वाले उस तत्व के बारे में भगवान आगे कहते हैं -

2.15

यं(म्) हि न व्यथयन्त्येते, पुरुषं(म्) पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं(न्) धीरं(म्), सोऽमृतत्वाय कल्पते॥2.15॥

कारण कि हे पुरुषों में श्रेष्ठ अर्जुन! सुख-दुःख में सम रहने वाले जिस धीर मनुष्य को ये मात्रास्पर्श (पदार्थ) व्यथित (सुखी-दुःखी) नहीं कर पाते, वह अमर होने में समर्थ हो जाता है अर्थात् वह अमर हो जाता है।

विवेचन : जो सुख-दुख को समान मानता है। सुख आने पर आनंदित नहीं होता और दुःख आने पर विचलित नहीं होता - वह ज्ञानी है। वह यह जानने पर विचलित नहीं होता, सम रहने का प्रयास करता है। सुख में एक्साइट (उत्तेजित) नहीं होता और दुःख में डिप्रेस्ड (तनावग्रस्त) नहीं होता। जो व्यक्ति भारी से भारी दुःख में विचलित नहीं होता, व्याकुल नहीं होता वह व्यक्ति अमरत्व को प्राप्त कर लेता है अर्थात् अमर हो जाता है, मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। वह स्वयं के आत्मतत्व को जानता है। वह इस देह के भाव से स्वयं को बाँधकर नहीं रखता, सुख-दुख आने से विचलित नहीं होता। इसके आगे भगवान जो बताते हैं वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है -

2.16

नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तः(स्), त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥2.16॥

असत् का तो भाव (सत्ता) विद्यमान नहीं है और सत् का अभाव विद्यमान नहीं है, तत्त्वदर्शी महापुरुषों ने इन दोनों का ही तत्त्व देखा अर्थात् अनुभव किया है।

विवेचन : भगवान महत्वपूर्ण ज्ञान देते हुए बताते हैं कि जो नित्य है, यदि हम उसे पकड़ लेंगे तो अमरत्व को प्राप्त हो जाएँगे। जो यह जान लेता है कि सत् और असत् में क्या अंतर है वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। वह भगवान को प्राप्त कर लेता है। भगवान जो बताते हैं वह सिद्धांत हो जाता है। भगवद् प्राप्ति होने पर असत् का भाव नहीं रहता अर्थात् असत्य कभी नहीं रहता और सत्य का अभाव नहीं रहता। सत्य सदैव परिपूर्ण रहता है। सत्य की व्याख्या करते हुए श्रीभगवान कहते हैं कि **सनातन चिरंतन शाश्वत सत्य वह है जो स्थान और काल बदलने पर भी नहीं बदलता।** जैसे ग्रह-नक्षत्र सत्य हैं। धरती परिवर्तनशील है। जीव-जंतु, पेड़-पौधे सब परिवर्तनशील हैं। जो भारत में रहते हैं उनके लिए "उत्तर दिशा में हिमालय है।" यह वाक्य सत्य है। किन्तु अन्य देशों में बैठे लोगों के लिए यह सत्य नहीं है क्योंकि उनके लिए स्थान और दिशा का परिवर्तन हो गया है। यह सापेक्ष सत्य है।

हिमालय भी परिवर्तनशील है, इसे सबसे तरुण पर्वत माना गया है। करोड़ों वर्ष पहले पृथ्वी भी नहीं थी यह सत्य है। असत्य का कोई अस्तित्व नहीं होता वह नष्ट हो जाता है। सारी दुनिया में हमें उस तत्व को ढूँढ़ना है जो सदा रहता है, बदलता नहीं, जो सत्य है। असत्य दिखाई देता है पर सत्य हमें दिखाई नहीं देता हमें असत्य में सत्य ढूँढ़ना है। जड़ के साथ चैतन्य भी छुपा है। हमारी जीवात्मा जो हमारा सत्य स्वरूप है वह हमें दिखाई नहीं देता पर हमें उसे ढूँढ़ना है। इन दोनों सत्य और असत्य तत्वों को तत्वदर्शी ही जानते हैं, देखते हैं। एक तत्व है जो सत्य है अपरिवर्तनशील है। दूसरा तत्व असत्य है जो परिवर्तनशील है। जैसे गंगा जी हैं। गंगा जी में हम उसी पानी में दोबारा स्नान नहीं कर सकते क्योंकि गंगा जी के पानी का प्रवाह चल रहा है। जिस पानी में स्नान किया था वह वहाँ से बह गया।किसी ग्रीक दार्शनिक ने कहा है

"You cannot wash your hands in same river again."

भगवान कहते हैं कि जो नहीं बदलता उसे जानो। हम वही हैं – सोहम्। दूध और पानी को मिलाया जाए तो वे एकाकार हो जाते हैं, फिर उनको अलग-अलग करना आसान नहीं होता है। लेकिन राजहंस दूध को पानी से अलग कर देता है। उसी प्रकार तत्वज्ञानी उन दोनों पक्षों में सत्य और असत्य को पहचानते हैं। हमें भी वही तत्वज्ञान प्राप्त करना है जिसके द्वारा जड़ और चेतन, सत् और असत् को अलग-अलग पहचान सकें। जड़ और चेतन आपस में ऐसे ही मिले है जैसे दूध और पानी। दूध है और दूध में मक्खन है। हमें दूध दिखाई देता है लेकिन मक्खन दिखाई नहीं देता पर वह अव्यक्त रूप में रहता है। दूध से

मक्खन बनाने के लिए पहले दूध का दही जमाया जाता है फिर उसका मंथन करके मक्खन निकाला जाता है। मक्खन दूध से आया पर दूध में दिखाई नहीं देता स्थूल रूप से नहीं दिखाई देता पर विचार करने पर सूक्ष्म रूप से दूध में मक्खन का तत्व दिखाई देता है। दूध में उसका स्वाद भी नहीं आता। सत् ऐसा ही तत्व है जो हमारे शरीर में है पर हमें दिखाई नहीं देता, वह हमारा आत्मतत्व है। मात्र तत्वज्ञानी ही आत्म तत्व और शरीर दोनों को अलग करके देखते हैं।

2.17

अविनाशि तु तद्विद्धि, येन सर्वमिदं(न्) ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य, न कश्चित्कर्तुमर्हति॥2.17॥

अविनाशी तो उसको जान, जिससे यह सम्पूर्ण (संसार) व्याप्त है। इस अविनाशी का विनाश कोई भी नहीं कर सकता।

विवेचन : भगवान अर्जुन को कहते हैं कि जिस अविनाशी तत्व को वह जानना चाहता है, सारा विनाशी तत्व, संसार, इस अविनाशी तत्व का है। उसका कोई नाम नहीं है लेकिन वह विश्व के कण-कण में व्याप्त है, अर्थात जिसने सारे विश्व को स्वयं में व्याप्त कर रखा है। ऐसा अव्यय, जिसका क्षरण नहीं होता, जैसा था वैसा ही रहता है, वह तत्व अव्यय है, अविनाशी है, अपरिवर्तनशील है। जिसने सारे विश्व को धारण करके रखा है उसे वह जान ले, कोई भी इसका विनाश नहीं कर सकता। यह विश्व, सृष्टि, शरीर सब नष्ट हो जाएगा और वह अविनाशी आत्मतत्व नष्ट नहीं होने वाला।

2.18

अन्तवन्त इमे देहा, नित्यस्योक्ताः(श्) शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य, तस्माद्युध्यस्व भारत॥2.18॥

अविनाशी, जानने में न आने वाले (और) नित्य रहनेवाले इस शरीरी के ये देह अन्त वाले कहे गये हैं। इसलिये हे अर्जुन! (तुम) युद्ध करो।

विवेचन : यह देह नाशवान है। हमारे चाहने पर भी यह वैसी नहीं रहती लेकिन शरीर में रहने वाला जीवात्मा नित्य है, नष्ट नहीं होता। यह आत्म-तत्व नित्य है, अविनाशी है। जो इस अविनाशी तत्व को जानना चाहते हैं और इसका उत्तर जानना चाहते हैं कि वे कौन हैं, वे जानते हैं कि शरीर का नाश हो जाएगा लेकिन अविनाशी तत्व सत्य है और सत्य का नाश नहीं हो सकता। वह अविनाशी तत्व अपरिमेय है, जिसको नापा नहीं जा सकता, गिना नहीं जा सकता। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है और इतना विशाल है कि उसकी विशालता नापी नहीं जा सकती। यह आत्मतत्व जीवात्मा सर्वत्र है, सारे विश्व में व्याप्त है, इसलिए विश्व के बराबर है। ज्ञानियों ने स्वीकार किया है कि विश्व का, ब्रह्मांड का आकार नापा नहीं जा सकता। वह (आत्मा) मन, बुद्धि से सूक्ष्म है। – हृदय दिखाई देता, ब्रेन दिखाई देता है लेकिन मन और बुद्धि नहीं। परंतु आत्मा मन और बुद्धि से भी सूक्ष्म है। आत्मा को मापा नहीं जा सकता इसलिए वह अप्रमेय है, अविनाशी है। भगवान अर्जुन को कहते हैं कि वे चिंता क्यों करते हैं। उसका मूल स्वरूप अविनाशी है, कभी नष्ट नहीं होगा। इसको जानने पर वह अपना कर्तव्य करे अर्थात युद्ध करे।

2.19

य एनं(म्) वेत्ति हन्तारं(म्), यश्चैनं(म्) मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो, नायं(म्) हन्ति न हन्यते॥2.19॥

जो मनुष्य इस (अविनाशी शरीरी) को मारने वाला मानता है और जो मनुष्य इसको मरा मानता है, वे दोनों ही (इसको) नहीं जानते; (क्योंकि) यह न मारता है (और) न मारा जाता है।

विवेचन : जो इसे मारने वाला और मरने वाला मानते हैं या जो ऐसा जानते हैं कि यह शरीर मर जाएगा तो सब कुछ खत्म हो

जाएगा, वे इसे ठीक से नहीं जानते - वो अज्ञानी हैं। हमारा स्वरूप न तो मरता है, न मारने वाला है और न ही मारा जा सकता है, यह हमेशा वैसा ही रहता है, निरन्तर रहता है। जो यह बात जानता है वह ज्ञानी है। इसलिए अपने आत्मतत्व को जानना है। “मैं कौन हूँ?" इसके ज्ञान को ही आत्मज्ञान कहते हैं।
स्वयं में स्वयं के स्वरूप को देखना, "मैं कौन हूँ" यह जानना ही आत्मज्ञान है।

2.20

न जायते म्रियते वा कदाचिन्, नायं (म्) भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः(श्) शाश्वतोऽयं(म्) पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥1.20॥

यह शरीरी न कभी जन्मता है और न मरता है (तथा) यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला नहीं है। यह जन्मरहित, नित्य-निरन्तर रहने वाला, शाश्वत (और) अनादि है। शरीर के मारे जाने पर भी (यह) नहीं मारा जाता।

विवेचन : आत्मा का कभी जन्म नहीं होता। जिसका जन्म नहीं होता है वह मरता भी नहीं। शरीर का जन्म होता है शरीर के साथ भाव जुड़ जाने पर हम यह मानने लगते हैं कि मेरा जन्म हुआ है। वास्तव में जीवात्मा अजन्मा है, आत्मा का जन्म नहीं हुआ यही भगवान का स्वरूप है। जो हो गया या फिर से बनने वाला है ऐसा नहीं हो सकता। वह नष्ट होगा फिर बनेगा ऐसा भी नहीं होगा। उसके लिए कोई काल नहीं – भूतकाल, भविष्य काल, वर्तमान काल - सभी कालों में वह उपस्थित था। वह करोड़ों वर्ष पूर्व भी था, अभी भी है और आगे भी रहेगा। क्योंकि वह अजन्मा है, नित्य है, सर्वदा है, शाश्वत है, सनातन है, पुरातन है, कब से है किसी को नहीं पता। शरीर नष्ट हो जाने पर भी यह नष्ट नहीं होता, यही सच्चा स्वरूप है।

ज्ञानेश्वर महाराज बहुत सुंदर उदाहरण देते हैं। जैसे बहुत से घटों में पानी भर कर रखने पर हर घट में सूर्य का प्रतिबिंब दिखता है। पानी समाप्त होने पर या घट के फूटने जाने पर प्रतिबिंब नहीं दिखाई देगा। प्रतिबिंब नष्ट हो जाने की स्थिति में भी सूर्य नष्ट नहीं होता। उसी प्रकार शरीर नष्ट हो जाने पर आत्म-तत्व नष्ट नहीं होता। जैसे घट के अंदर आकाश है बाहर भी आकाश होता है। घट टूटने पर आकाश नष्ट नहीं होता अपितु घट के अंदर और बाहर का आकाश एकाकार हो जाता है।

2.21

वेदाविनाशिनं(न्) नित्यं(म्), य एनमजमव्ययम्।
कथं(म्) स पुरुषः(फ्) पार्थ, कं(ङ्) घातयति हन्ति कम्॥2.21॥

हे पृथानन्दन! जो मनुष्य इस शरीरी को अविनाशी, नित्य, जन्मरहित (और) अव्यय जानता है, वह कैसे किसको मारे (और) (कैसे) किसको मरवाये?

विवेचन : इस अविनाशी आत्म तत्व को - जो नित्य तत्व है, निरंतर रहता है, अजन्मा है, जिसका क्षरण नहीं होता, जैसा था वैसा ही रहता है - जो व्यक्ति इस बात को जानता है कि वह उस देख नहीं सकता फिर भी उसे मानता है, उसका अनुभव करता है वह ज्ञानी है। वह ज्ञान-चक्षु खुलने पर देखता है, उसे अनुभव कर सकता है। दूध में मक्खन है ऐसा हम मानते हैं पर उसे उस देख नहीं सकते। शरीर (देह) नाशवान है। शरीरी (देही या आत्मा) अविनाशी है। देह और देही दोनों महत्वपूर्ण हैं।

2.22

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥2.22॥

मनुष्य जैसे पुराने कपड़ों को छोड़कर दूसरे नये (कपड़े) धारण कर लेता है, ऐसे ही देही पुराने शरीरों को छोड़कर दूसरे नये (शरीरों में) चला जाता है।

विवेचन : जैसे मनुष्य अपने पुराने वस्त्र जीर्ण हो जाने पर उनका त्याग कर देते हैं और नए वस्त्र धारण कर लेते हैं, उसी प्रकार शरीर के जीर्ण हो जाने पर जीवात्मा उस जीर्ण शरीर का त्याग करके नए शरीर में चली जाती है।

2.23

नैनं(ञ्) छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं(न्) दहति पावकः।
न चैनं(ङ्) क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥2.23॥

शस्त्र इस (शरीरी) को काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती, जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु (इसको) सुखा नहीं सकती।

विवेचन : शरीर को शस्त्र काट सकते हैं पर जीवात्मा को नहीं, अग्नि शरीर को जला सकती है पर जीवात्मा को नहीं, देहांत हो जाने पर शरीर को जलाते हैं पर जीवात्मा वैसी की वैसी रहती है इसे कोई जला नहीं सकता। जीवात्मा को जल गीला नहीं कर सकता, बिगाड़ नहीं सकता, वायु इसे सुखा नहीं सकती। जब यह आत्मज्ञान हो जाता है तो वह आत्मज्ञानी देह के साथ बँधा नहीं रहता। इसी भाव को रखकर अनेक हुतात्माओं ने अपना शरीर देश के लिए, भारत माता के लिए बलिदान कर दिया कि मरने के बाद हम नया शरीर धारण करके आएँगे और भारत माता को पुनः स्वतंत्र कराकर रहेंगे।

'शरीर मैं नहीं ँ हूँ' यह अनुभूति महत्त्वपूर्ण है। एक प्रवचन चल रहा था। प्रवचन अच्छा हो गया। गजानंद महाराज जी ने कहा तो प्रवचन करने वाला व्यक्ति बोला कि यही सत्य है। महाराज जी ने जिस खटिया पर वक्ता बैठे थे उसके नीचे आग जला दी। जब खटिया जलने लगी तो प्रवचन करने वाला व्यक्ति भागने लगा। महाराज ने उसे हाथ पकड़ कर बैठा दिया कि तू अभी तो ज्ञान की बात कर रहा था, अब क्या हुआ। तुझे जब तक अनुभूति नहीं होगी तब तक यह ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। कर्मयोग का आचरण करने पर यथार्थ ज्ञान संभव है। केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं, अनुभूति प्राप्त करना महत्त्वपूर्ण है।

2.24

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम्, अक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः(स्) सर्वगतः(स्) स्थाणुः(र्), अचलोऽयं(म्) सनातनः॥2.24॥

यह शरीरी काटा नहीं जा सकता, यह जलाया नहीं जा सकता, (यह) गीला नहीं किया जा सकता और (यह) सुखाया भी नहीं जा सकता। (कारण कि) यह नित्य रहने वाला, सबमें परिपूर्ण, अचल, स्थिर स्वभाव वाला (और) अनादि है।

विवेचन : जीवात्मा अछेद्य है - इसे काटा नहीं जा सकता, जलाया नहीं जा सकता, भिगोया नहीं जा सकता, सुखाया भी नहीं जा सकता। यह नित्य है, निरंतर है, सर्वगत है, सर्वदा है, सर्वत्र है। जो मुझमें है, तुझमें है, सबमें वही आत्म-तत्व है। वह स्थाई है - स्थिर है, इधर उधर नहीं भागता, अचल है। शरीर इधर-उधर जाता है पर जीवात्मा स्थिर रहती है। यह सनातन है। भगवान ने संक्षेप में बताया कि आत्मतत्व क्या है, कैसा है। इसको समझने के लिये आगे की गीता पढ़ना, पढ़ाना और आचरण में लाना है। इस त्रिसूत्री को अपनाना है। इससे शायद यह बात धीरे-धीरे हमारी समझ में आ जाए। ज्ञान प्राप्त करने प्रयास करना है, अभ्यास करना और उस प्रयास और अभ्यास को भी भगवद् अर्पण करते चलना है।

आज का अभ्यास भगवान को अर्पण करने के साथ सत्र का समापन हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||